ISSN: 2347-7660 (Print) | ISSN: 2454-1818 (Online)

पत्रकारिता,शिक्षा एवं सोशल मीडिया के त्रिकोणीय प्रयोग

प्रो0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र

सत्य और असत्य का संघर्ष एक शाश्वत सामाजिक घटना है। समाज में इस सत्य और असत्य घटित घटनाओं को आम और खास जन को पहुँचाने में पत्रकारिता सदैव ही शक्तिशाली, प्रभावशाली एवं सर्वाधिक सशक्त–सक्षम माध्यम रहा है। किसी भी राष्ट्र का लोकतंत्र चार स्तम्भों पर टिका होता है और वही इसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व निभाते हैं–विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका और प्रेस (पत्रकारिता), जिसे आधुनिक युग में मीडिया की संज्ञा दी गयी है। इन चारों स्तम्भों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेस होती है। प्रेस अर्थात् मीडिया से सदैव यही अपेक्षा की जाती है कि वह जो भी कार्य करेगा, सहजता और निष्पक्षता के साथ करेगा। पत्रकारिता एक ऐसा माध्यम होता है जो सरकार और जनता दोनों के बीच मध्यस्थता का कार्य कर सरकार की नीतियों को आम आदमी तक पहुँचाती है और आम आदमी की समस्याओं को और सरकार के प्रति उनके नजरिये को सरकार तक पहुँचाती है। साधारण शब्दों में कहें तो ''पत्रकारिता सरकार और आम आदमी के बीच एक पुल का कार्य करती है।'' पत्रकारिता से हमेशा यही अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों को जागरूक करे और उनका मार्गदर्शन करे और राष्ट्र पर आने वाली किसी भी समस्या का समाधान अपने स्तर से करे किन्तु पत्रकारिता का यह आदर्श रूप आज क्रूर भयावह रूप धारण करता जा रहा है।

पत्रकारिता में स्वयं से पहले उसकी प्रतिभा और दक्षता खुद बोलती है। मीडिया में छल, छद्‌म, झूठ और मक्कारी किसी को भी ले डूबती है। आज के पाठक का यह मानना है कि फलां अखबार, फलां का समर्थक है, उसके किसी भी खेमे के समर्थक होने के कारण अखबार की विश्वसनीयता की साख खत्म होती जा रही है। इन क्षेत्रों के अधिकांश अखबार नए उभरे मूल्यविहीन मध्य वर्ग या कथित अभिजात्य वर्ग के हाथों में कैद हैं। आज की पत्रकारिता धन कमाने का मात्र साधन रह गई है। उसने ब्लैक मेलिंग का धंधा अपना लिया है। अभी हाल में अनेक ऐसे मामलों को न्यूज चैनल और अन्य प्रिन्ट माध्यमों में इनका विवाद इसके ताजा उदाहरण हैं। पूँजीपति केवल पैसा बँटोरना चाहते हैं। संपादकों, लेखकों तथा संवाददाताओं का खून चूसकर वर्तमान पत्रों को व्यवस्थापक अपनी तिजोरियाँ भरने की उधेड़बुन में बने रहते हैं जो भ्रष्ट राजनीति में प्रवेश करके उसे बदनाम करने में संलग्न हैं, वहीं हिन्दी पत्रकारिता में भी प्रवेश कर चुके हैं। जनसेवा और परोपकार का सुदर वेश बनाये आज का हिन्दी पत्रकार जगत निडर होकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि आज की मीडिया न सिर्फ आन्दोलन खड़ा कर सकती है बल्कि उसे पूरे वजूद के साथ संचालित भी कर सकती है। मीडिया की यह भूमिका सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी। स्पष्ट है कि मण्डल विरोधी गतिविधियों, आरक्षण विरोधी तेवरों के चलते इस पत्रकारिता को हाशिए के समाज ने नकारात्मक दृष्टि से देखा और जिस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर ने अपने दौर की मीडिया को पक्षपाती करार दिया था, उसी प्रकार इस मण्डल विरोधी दौर की मीडिया को भी पक्षपाती करार दिया। मीडिया के पक्षपात का सबसे बड़ा

सबूत यह है कि ''रिपोर्टिंग के तहत हाशिए के समाज के विरोध में होने वाले प्रदर्शनों को बढ़ा–चढ़ा कर दिखाया गया, जबकि हाशिए के समर्थकों को बिल्कुल गायब कर दिया गया।'' समाज के हाशिए के लोगों की आवाज को आज की पत्रकारिता तरजीह क्यों नहीं दे रही है? जबकि पत्रकारिता का काम लाखों दबे–कुचले लोगों की आवाज को सामने लाना है। इसका प्रमुख कारण आबादी के अनुपात में समाज के हाशिए के पत्रकार काफी कम संख्या में हैं। ''संख्या कम होने के कारण उनकी आवाज कभी अर्थपूर्ण ढंग से सामने नहीं आ पाती क्योंकि पूरा मीडिया परम्परावादियों के लोगों से भरा पड़ा है।''

समाज एवं देश के सुधार और विकास के लिए मीडिया तथा राजनीति का घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है। लेकिन जबसे पत्रकारिता का माफिया तथा राजनीति के साथ गठजोड़ हुआ है तभी से इसकी छवि धूमिल पड़ती जा रही है। आज का युग भौतिकवाद का युग कहलाता है। अर्थ प्रधान हिन्दी अखबारों का अर्थखण्ड जिस तेजी से कारपोरेट कल्चर बदल रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आ रही हैं। इसके साथ ही भारतीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक से ऋण आ रहा है उसके ही साथ–साथ गुपचुप मूल्य संस्कृति भी आ रही है। हिन्दी इलाके में आज भी बहुसंख्यक खेतिहर हैं लेकिन उनके लिए कोई हिन्दी की अर्थपत्रिका नहीं है। शेयर घोटाला और कई अन्य घोटालों की इतनी बड़ी घटना हुई लेकिन कोई हिन्दी अखबार सहज ,भाषा सूचनाओं के माध्यम से हिन्दी पाठकों को नहीं बता सका है। बैंकों का विशाल नेटवर्क है। दूसरी वित्तीय संस्थाएँ हैं उनकी जटिलताएँ हैं लेकिन हिन्दी अखबार इस पूरी दुनिया से अलग थलग और कटे हुए हैं। इस देश के प्रभु वर्ग नौकरशाही पर जानकारी पर पूर्ण लेख कम देखने को मिलते हैं क्योंकि आज घटिया राजनेताओं की अलग बातें सनसनी खेज, राजनीतिक अफवाहें ही मुख्य समाचार हो गई हैं।

हिन्दी अखबारों के संपादकीय पृष्ठों को परखने वाले, चुनिंदा विशिष्ट विषयों पर गहराई एवं गम्भीरता से लिखने वाले स्तम्भकार बहुत नहीं हैं। हालाँकि हिन्दी में मौलिक ढंग से सोचने–लिखने वालों की आज भी कमी नहीं है लेकिन उन लोगों को हिन्दी अखबार, हिन्दी पाठकों से जोड़ नहीं पाये हैं। सामाजिक चिंता को लोगों की निजी चिंता में बदलने का औजार है। अखबार इस कसौटी पर पत्रकारों का मूल्यांकन कर आसानी से निष्कर्ष निकाल सकते हैं। प्रसार की दृष्टि से भले ही हिन्दी पत्रकारिता फैली हो पर उसके सोचने के स्तर चिंतन कौशल में बहुत ही गिरावट आयी है। आरक्षण का मामला हो या अयोध्या, का मस्जिद–मंदिर प्रकरण, मंडल आयोग की रिपोर्ट, 2जी स्प्रेक्टम घोटाला, चारा घोटाला, कोयला आवंटन घोटाला आदि पर अखबार तटस्थ नहीं रह सके हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पत्रकारिता की अतिवादिता का सबसे बड़ा कारण यह है कि आज सांस्कृतिक सरोकारों के रिश्ते कमजोर होते जा रहे हैं जबकि विचार किया जाय तो संस्कृति ही वह कारगर तत्त्व है जो मीडिया के आचार–विचार को नियंत्रित और विकसित कर सकती है। ''अगर आज मीडिया के दैत्याकार चेहरे के भीतर विचार–तत्त्व गायब हो गया है तो इसलिए कि हर समय उसकी क्रूर अट्टहास, चीख ही सुनायी पड़ रही है। विचारों का क्षय कितना भयानक और क्रूर होता है, इसका अन्दाजा आज चौबीस घण्टे चलने वाली खबरिया चैनलों की चीत्कार में देख–सुन सकते हैं।'' स्पष्ट है कि पत्रकारिता पर जिस वर्ग या जाति का नियंत्रण होगा वह उसी के हितों की बात करेगी। इस सम्बन्ध में कुछ समय पहले स्वतंत्र पत्रकार अनिल चमड़िया, जीतेन्द्र कुमार और योगेन्द्र यादव ने मिलकर दिल्ली के 'राष्ट्रीय मीडिया' कहलाने वाले सैंतीस बड़े अखबार, पत्रिकाओं और टी0वी0 चैनलों आदि के शीर्ष पदों पर आसन्न

तीन सौ पन्द्रह पत्रकारों की सामाजिक पृष्ठभूमि का सर्वेक्षण किया।

पत्रकारिता जगत से जुड़े कुछ विशेष पत्रकारों का यह मानना है कि वर्तमान में पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ने की नहीं, अपितु मात्र देखने की चीजें हो गयी हैं। कुछ लोग इसे ड्राइंग रूम की शोभा मानते हैं, तो कोई कुछ और......। उक्त सोच रखने वाले शायद यह भूल जाते हैं कि मीडिया अपने उद्देश्य से दूर होता जा रहा है। आखिर यह वही माध्यम है, जिन्होंने कभी क्रान्ति हेतु उपयुक्त वातावरण का सृजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। क्या भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और बाजारीकरण के नाम पर औद्योगिक एवं तकनीकी विकास की आड़ में संचार माध्यमों द्वारा संस्कृति के सरलीकरण के रूप में इनमें विकृति उत्पन्न करना किसी प्रकार की साजिश नहीं है? यह किसी को नहीं भूलना चाहिए कि विकास एवं संस्कृति एक साथ कार्यरत होते हैं, जिनसे दैनन्दिन समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है और समस्त मानवोचित सम्बन्धों एवं समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है। औद्योगिक एवं तकनीकी विकास मानव के समग्र विकास का एक माध्यम तो हो सकते हैं, किन्तु उनमें सांस्कृतिक तत्वों का समावेश नहीं होगा, तो दुष्परिणाम स्वाभाविक हैं।

वर्तमान समाज में हर तरफ गला–काट प्रतियोगिता का दौर चल रहा है। यही कारण है कि यदि किसी को आगे बढ़ना है तो इसके लिए यदि उसे दूसरे की जान भी लेनी पड़े तो उसे कोई संकोच नहीं हो रहा है। आज के परिप्रेक्ष्य में अनेक लोग पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके हैं। पैसे, ताकत और पद से संपन्न ये लोग जब देखते हैं कि उनकी बातों से दूसरे लोग सहमत नहीं हैं, उनके कार्यों या दिखावों को विभिन्न समाचार–पत्रों में समुचित स्थान नहीं मिल रहा है। और उन्हें आत्म–प्रशंसा से प्रायः वंचित होना पड़ रहा है। तो ऐसी स्थिति में वे अपना एक समाचार–पत्र प्रारंभ कर देते हैं। यही कारण है कि समाज में समाचार–पत्रों की संख्या बहुत अधिक हो गई है किन्तु इनमें गुणवत्ता का अभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी के प्रमुख व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई ने एक व्यंग्य के दौरान लिखा था कि ''जहाँ भी पत्थर फेंको, वहाँ से साहित्य में पी–एच0डी0 किया व्यक्ति चिल्ला उठता है।'' ठीक इसी प्रकार आज प्रायः कहीं भी नजर दौड़ाओ तो वहाँ किसी न किसी समाचार–पत्र का कार्यालय दिखलाई पड़ जाता है। अर्थशास्त्र का एक नियम है कि जब एक ही व्यावसाय में बहुत सारे लोग उतर जाते हैं, तब वहाँ एक–दूसरे से आगे बढ़ने ही होड़ लग जाती है और प्रतिस्पर्धी को नीचा दिखाने का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं दिया जाता है। ऐसे दौर में आगे बढ़ना और अपने आपको छल–प्रपंचों से दूर रखकर पूरी ईमानदारी से अपना कार्य करना एक बहुत गंभीर चुनौती हो जाती है।

स्वामी विवेकानंद ने तत्तकालीन समय की शिक्षा पद्धति का उसकी निषेधात्मकता के कारण ही विरोध किया था। शिक्षा के मुख्य लक्ष्यों में से एक है बौद्धिकता के साथ ही मनुष्य में मानवीय गुणों और संवेदना का विकास करना। स्वामी विवेकानन्द तात्कालीन शिक्षा प्रणाली से बेहद असंतुष्ट थे। पराधीन भारत में व्याप्त यह शिक्षा प्रणाली लोगों में स्वतंत्र चिन्तन की धारा बहा सकने में असमर्थ थी। इसके अंतर्गत भारतीयों को अपने धर्म,संस्कृति,परम्परा,इतिहास और अस्तित्व–बोध का ज्ञान ही नहीं था। उपर्युक्त गुणों के अभाव में शिक्षा अपूर्ण थी। ऐसी ही शिक्षा का उल्लेख करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि ''जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ अच्छा अंश भी है और बुराइयाँ बहुत हैं। इसलिए ये बुराइयाँ उसके भले अंश को दबा देती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनाने वाली नहीं कही जा सकती। यह शिक्षा केवल तथा सम्पूर्णतः निषेधात्मक है।

निषेधात्मक शिक्षा या निषेध की बुनियाद पर आधारित शिक्षा मृत्यु से भी भयानक है।'' अर्थात् यह शिक्षा सकारात्मक पक्षों की तुलना में नकारात्मक गुणों को अधिक मात्रा में समेटे हुए थी। स्वामी जी ने इसे निषेधात्मक शिक्षा कहकर संबोधित किया। इस शिक्षा के अंतर्गत भारतीय जन–सामान्य को यह बताया जा रहा था कि उनके पूर्वज असभ्य, संस्कारहीन और अज्ञानी थे और विकास की प्रक्रिया में उनका कोई योगदान नहीं था। इस प्रकार के तथ्य लोगों में हीनता बोध उत्पन्न कर रहे थे। स्वामी जी मानते थे लोगों को अपने स्वर्णिम अतीत, अनुकरणीय रीति–रिवाजों और परम्पराओं तथा ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य खोज एवं आविष्कारों से परिचित होना अति आवश्यक है। इससे लोगों में आत्मविश्वास व प्रेरणा का संचार होता है और वे विकास मार्ग पर अग्रसर होते हैं। ऐसी स्थिति में समाचार–पत्रों को इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए।

इस बीच अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिहाज से सोशल मीडिया ने इतनी गुंजाइश अवश्य छोड़ रखी पैदा की है कि कोई भी व्यक्ति अपने मनोगत विचारो को उस पर सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त कर सकता है लेकिन यहाँ प्रश्न उठता लाजिमी है कि क्या इसे पत्रकारिता की क्षेत्रो में रखा या माना जा सकता है? सोशल मीडिया का यह माध्यम हर व्यक्ति के लिए खुला हुआ है और उसका इस्तेमाल करने के लिए संपादकीय प्रशिक्षण, संपादकीय नियंत्रण और संपादकीय विवेक की आवश्यकता नहीं है। इनके अभाव में ट्विटर, फेसबुक, व्हाट्सएप, इंटरनेट आदि का जो भयंकर दुरुपयोग हो रहा है उससे हर कोई अवगत है हालांकि डिजिटल मीडिया का एक स्वागत योग्य पक्ष है जो इस हाल में प्रकट हुआ है। देश के कुछ एक माने जाने पत्रकारों ने ऑनलाइन अखबार या चैनल प्रारंभ किए हैं जिन्होंने पारंपरिक पत्रकारिता के नियमों एवं नैतिकता का पालन करते हुए एक नया पाठक या दर्शक वर्ग बनाने में सफलता हासिल की है। द वायर, द प्रिंट, द स्क्रॉल जैसे नाम यहाँ ध्यान आते हैं। समाचार पत्रों एवं टी.वी. चैनलों के ऑनलाइन संस्करण भी स्थापित हो गए हैं जो उनकी पहुँच का दायरा बढ़ाने में सहायक हुए हैं। डिजिटल मीडिया पर आज दुनिया के हर देश और हर भाषा के अखबार उपलब्ध हैं। शर्त इतनी है कि कोई भी उस भाषा से परिचित हो लेकिन अनुपातिक दृष्टि से देखा जाए तो सोशल मीडिया पर व्याप्त उच्छृंखलता के सामने यह कहीं नहीं टिक पाते।

आज सबसे बड़ी बात यह है कि समाज में केवल बुराईयाँ ही नहीं बल्कि उसमें अच्छाईयाँ भी व्याप्त हैं,किन्तु मुख्य समाचार के रूप में नकारात्मक या निषेधात्मक खबरों को ही वरीयता दी जाती है। समाचार संपादकों की ऐसी सोच बन गई है कि समाज की बुराइयों को विस्तृत रूप में पाठकों तक पहुँचाकर ही समाज का भला होगा, किन्तु वे भूल जाते हैं कि निरंतर नकारात्मक विचारों को पढ़ने–देखने,सुनने से व्यक्ति में नकारात्मकमा का स्तर बढ़ जाता है। पत्रकारिता की इस नकारत्मकता पर सकारात्मक शैक्षिक सोच और आज की सोशल मीडिया के त्रिकोणीय सन्तुलन से परिवर्तन किया जा सकता है।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रवीर, राकेश,भारत में प्रिन्ट, इलेक्टॉनिक और न्यू मीडिया– प्रतिभा प्रकाशन,नई दिल्ली–2019
2. मीडिया–मीमांसा,जुलाई–सितंबर 2017
3. मीडिया–विमर्श, जुलाई–दिसम्बर 2008, सितम्बर 2011,सं0 श्रीकान्त सिंह मीडिया विमर्श, द्विवेदी संजय
4. संचार माध्यम, दिसम्बर 1981, भारतीय जनसंचार संस्थान,
5. उत्तर प्रदेश ,हिन्दी पत्रकारिता विशेषांक

,मार्च–अप्रैल,1976

6. चतुर्वेदी जगदीश्वर–मीडिया समग्र(11 भागों में) ,स्वराज प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2013
7. चतुर्वेदी जगदीश्वर–आधुनिकतावाद,साहित्य और मीडिया–अनामिका पब्लिकेशंस डिस्ट्रीब्यूटर लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019
8. बुधवार जयनारायण,प्रमिला भूमंडलीकरण ,बाजार और मीडिया–स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली–प्रथम संस्करण 2008
9. भारद्वाज राजकुमार,मीडिया रिपोर्टिंग : वर्तमान और भविष्य,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली–संस्करण 2020
10. धर प्रांजल,समकालीन वैश्विक पत्रिका में अखबार–वाणी प्रकाशन दरियागंज ,नई दिल्ली–प्रथम संस्करण 2013
11. बारी राकेश,पत्रकारिता की खुरदरी जमीन की,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–संस्करण 2015
12. खान जाहिद,आधी आबादी–अधूरा सफर–अनामिका पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,संस्करण 2019
13. पांडे कैलाशनाथ–हिंदी पत्रकारिता–संवाद और विमर्श, लोकभारती प्रकाशन महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, संस्करण 2017
14. तिवारी डॉ0 अर्जुन,हिंदी पत्रकारिता का वृहद इतिहास–वाणी प्रकाशन संस्थान,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ,संस्करण 1995
15. चौबे कृपाशंकर,पत्रकारिता के उत्तर आधुनिक चरण,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली–2005
16. भानावत संजीव–पत्रकारिता का इतिहास एवं जन संचार माध्यम,यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, जयपुर–2008
17. सिंह डॉ0 अजय कुमार, सिर्फ पत्रकारिता–लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद–2013,पृ0–16
18. यादव डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, शुक्ल डॉ0 अमित, भारत में हिन्दी पत्रकारिता के उभरते परिदृश्य और आधी दुनिया की भागीदारी–अल्फा पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली–2013
19. कुलश्रेष्ठ संदीप ,भारत में प्रिन्ट,इलेक्टॉनिक और न्यू मीडिया–प्रतिभा प्रकाशन,नई दिल्ली,2018
20. मंडल दिलीप,मीडिया का अंडरवर्ल्ड पेड न्यूज़ कारपोरेट और लोकतंत्र,राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2018
21. बाजपेयी अंबिका प्रसाद–समाचार पत्रों का इतिहास–ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी–संस्करण 1986
22. सिंह डॉ. धीरेन्द्र, हिन्दी पत्रकारिता–विश्वविद्यालय प्रकाशन, बनारस–2001.
23. परमार डॉक्टर तारा, महिला सर्जन के विविध आयाम–भारतीय दलित साहित्य,अकादमी ,उज्जैन–2010
24. भारती जयप्रकाश,हिन्दी पत्रकारिता दशा एवं दिशा,प्रवीण प्रकाशन ,नई दिल्ली–1994
25. लाल डॉ0 गुरचरण,पत्रकारिता के सिद्धांत–भारत बुक सेंटर ,लखनऊ, 2000